नागार्जुन के उपन्यास 'कुम्भीपाक' में चित्रित स्त्री संघर्ष

अवनीश सिंह नरवरिया
डॉ. सोलंकी प्रतिभा[1]

सारांश -

प्रकृति और पुरुष के समन्वय से ही संसार की सृष्टि संभव है, पुरुष प्रकृति से ही विषम परिस्थितियों में अनुकूल शक्ति प्राप्त करता है। इसी शक्ति के सहारे मनुष्य सदियों जीवन जीने के लिए प्रयत्नशील है। विश्व के इतिहास, विशेषतः भारतीय इतिहास को देखा जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक काल को छोड़कर, न तो भारतीय स्त्री कभी स्वावलम्बी बन पाई और न तो पुरुष अपने अहम से मुक्त हो पाया। कुछ अपवादों को छोड़कर, प्राचीनकाल से ही स्त्री की अस्मिता को उभरने का मौका ही नहीं मिला। उसकी पहचान एक गुलाम, नौकरानी, कमजोर के रूप में करायी गयी। नारी अस्मिता के लिए अनेक बाधाएँ प्राचीनकाल में भी थी और आज भी हैं, पर आधुनिकता के आरंभ से स्त्री जागरूकता का दौर आरंभ हुआ। सन् 1970 के बाद तो परंपरागत पुरुष प्रधान व्यवस्था को तोड़कर नारी अपनी अस्मिता को बनाए रखने का प्रयास करने लगी है। नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में ऐसे ही स्त्रीपात्रों को विशेष स्थान देते हुए उनके सामाजिक संघर्ष और विवशता को उजागर किया है। जिसमें विधवाविवाह, अनमेल विवाह, दहेजप्रथा, बलात्कार, अशिक्षा आदि। 'कुम्भीपाक' उपन्यास में नागार्जुन इन सारी समस्याओं को उद्घाटित करते हुए स्त्री मुक्ति के लिए शिक्षा और आर्थिक स्वावलंबता की वकालत करते हैं।

कुंजी शब्द - प्रकृति, पुरुष, कुम्भीपाक, उपन्यास, नागार्जुन, वैदिक काल, भारतीय स्त्री, सामाजिक संघर्ष, नारी अस्मिता, स्त्री मुक्ति, शिक्षा, आर्थिक स्वावलंबता।

कुम्भीपाक उपन्यास स्त्री जिजीविषा की कीमत पर फलते–फूलते नरक की कहानी है। उपन्यास में वर्णित एक ही मकान में रहने वाले छः किराएदारों की जीवनचर्या पर केन्द्रित यह उपन्यास हमारे विकासमान नागर जीवन के जिस सामाजिक यथार्थ की परतें खोलता है, वह

[1] शोधार्थी, हिंदी विभाग, माता जीजाबाई शासकीय कन्या महाविद्यालय, इंदौर।
शोध निर्देशक एवं विभागाध्यक्ष (हिंदी विभाग), माता जीजाबाई शासकीय कन्या महाविद्यालय, इंदौर।

सदियों से समूचे भारतीय जीवन का यथार्थ रहा है, क्योंकि स्त्री के प्रति पदार्थवादी नज़रिये में अब तक कोई खास कमी आई नहीं है। आर्थिक अभावों में पिसती स्त्री किस प्रकार भोगवाद की भट्टी में झोंक दी जाती है, उनकी पीड़ा और मुक्तिकामी छटपटाहट को नागार्जुन ने उपन्यास में गहरी आत्मीयता से व्यक्त किया है।

उपन्यास में विभाकर, इंदिरा, भुवन, चम्पा, निर्मला आदि की कहानी यथार्थवादी शैली में वर्णित की गई है। माने हुए नरकों में से एक कुम्भीपाक भी है जहाँ मरने के बाद मनुष्य जाता है लेकिन विधवा एवं निराश्रित महिलाओं को जीवित भ्रष्ट लोगों ने किस प्रकार कुम्भीपाक में डाल रखा है। उपन्यास का मूल आधार नारी पुरुषों के बीच अनैतिक संबंध है जिसमें सामाजिक संबंधों को भी शर्मसार किया गया है। यहीं नारी खरीदी जाती है उसका व्यवसाय होता है और कहीं वह परिस्थितिवश विवश होकर स्वयं उपभोग की सामग्री बन जाती है उपन्यास की मुख्य पात्र इंदिरा जिसका विवाह पन्द्रह वर्ष की उम्र में होता है लेकिन हवाई दुर्घटना में पायलट पति की मृत्यु हो जाती है उसके बाद इंदिरा की स्थिति वैसी ही दुखद होती है जैसी हमारे समाज में अभागिन विधवाओं की होती है।

"इंदिरा नाम है, उम्र है उन्नीस की। ज़िला मुंगेर की किसी मशहूर बस्ती में पैदा हुई थी, घराना ऊंची नाकवालों का। पन्द्रह की उम्र में शादी हुई। दूल्हा पायलट था, उसी वर्ष हवाई दुर्घटना में जान गवां दी। इंदिरा का फिर वही हाल हुआ, घुटी हुई तबियत के युवकों और आदर्शहीन अंधेड़ों के बीच एक विधवा तरुणी का जो हाल होता है।

गर्भ चार महीने का हुआ। एक अत्याचारी रिश्तेदार डॉक्टरी इलाज के बहाने इंदिरा को आसनसोल ले गया और धर्मशाला में अकेली छोड़कर खिसक आया। तब से दो वर्ष इंदिरा के कैसे कटे हैं यह बात धरती जानती होगी कि आसमान जानता होगा..... हम आप तो अंदाजा भी नहीं लगा सकते भईया।"

देह व्यापार के कुचक्र में फंसी इंदिरा को निर्मला छुड़ाती है और भाई भाभी के बीच भेज देती है। जब ऐसा अवसर आता है तो निर्मला जैसी स्त्रियां कठोर निर्णय लेने से नहीं चूकती।
"एक अनाथ लड़की आपकी शरण में जा रही है मुझे पूरा भरोसा है कि आप और भाभी इस लड़की को अपने परिवार में शामिल कर लेंगे लड़कियों और औरतों की खरीद–विक्री जिनका धंधा था, ऐसे ही एक राक्षस के चंगुल से आपकी छोटी बहन इन्दिरा को छुड़ा लाई है झपट्टा मारकर चील की तरह छीन लाई है...."

ऐसी ही एक पात्र जो 'मामी' के नाम से उपन्यास में वर्णित है जो असहाय और निराश्रित जीवन जीने के लिए पूरी तरह आर्थिक रूप से माहिम पर निर्भर है। महिम जो मामी का खर्चा चलाता है कभी–कभी मामी पर खीजता है। वह नशा करता है और कभी–कभी आर्थिक स्थिति

खराब होने पर मामी पर झुंझलाता है। ये अनैतिक रिश्ते सामाजिक रिश्तों को भी शर्मसार करते हुए दिखाई देते हैं।

"अशंक का मन अंदर ही अंदर कुलबुला उठा, ठीक ही तो कहते हैं लोग..... महिम जैसा पतित पाटलिपुत्र की इस नगरी में दूसरा नहीं। शराब और शराब और शराब.....औरत और औरत और औरत..... यह कौन होगी इसकी? मामी? सचमुच की मामी? न मामी नहीं होगी इतना अपमान मामी तो नहीं बर्दाश्त करेगी"!

मामी जैसी सैकड़ों स्त्रियां जो सामाजिक दंश झेलते हुए निराश्रित जीवन जीने के लिए विवश हैं। वे इस कुम्भीपाक के दलदल से निकलने लिए छटपटा रही हैं, कहीं किसी से सहानभूति पा जाएं तो उनका उद्धार हो जाए। अशंक को मामी इसी भाव से देखती है और स्वतंत्र हो जाना चाहती है।

"परिवार की डाल से चुकी औरतों के प्रति आपकी हमदर्दी मुझे अनूठी लगी। तब आप मुझे भी अपने पात्रों में शामिल कर लीजिए..... कल्पित पत्रों के प्रति जब आपकी सहानुभूति उतनी गहरी थी तो जिन्दा पात्रों की दिक्कतें आपसे भला कैसे देखी जाएंगी? मैंने आपके बारे में महिम जी से काफी सुना है। मैं आपसे फिर मिलना चाहती थी। अभी देखा न ज़रा सी भूल हुई कि गधी–सुअर–उल्लू बना डाला। अब इनके साथ मेरा निभेगा नहीं..... आप कहीं कोई काम दिलवा दीजिए....."

देह व्यापार के जंजाल में फंसी बुआ जिनका नाम चंपावती है। एक तरफ इस कुम्भीपाक के कुचक्र का संचालन करने में लिप्त हैं दूसरी तरफ इन्दिरा के इस कुचक्र से बाहर निकलने की कहानी सुनकर बुआ द्रवित हो जाती हैं और अन्ततः वे इस निराट 'सोनागाछी' के दलदल से निकलने को छटपटाती हैं।

"चम्पाा ने ढेर–सी साँस छोड़ी, गर्दन उठाकर देखा। नील निर्मल आकाश और विराट सूनापन, चम्पा को लगा कि यह उसकी ही रिक्तता असीम और नीलाभा बनकर ऊपर छाई हुई है। दिन का वक्त है। ढलता सूरज पश्चिम की तरफ मकान की ओट में चला गया है। तारे नहीं हैं तो नीलिमा और सूनापन दिल पर और भी गहरा असर डालते हैं...कुल मिलाकर कितना अच्छा लगता है...खो गई चम्पा ! गर्दन उसी तरह ऊपर की ओर थी, आंखें उठी हुईं !....दिल के अंदर किसी खोह से आवाज़ आई : चली गई, भवन तुमने ठीक ही किया ! मालदार तो मतलब का ही सौदा करता है.... तुमसे तबियत भर जाती तो दूसरी का सौदा करता ! पेट भरा हो और टेंट में काफी रकम हो तो हरी–हरी चरना चाहेगा आदमी....नहीं, तुमने अच्छा किया भुवन ! इस कुंभीपाक से निकल भगीं, खूब किया!....."

नागार्जुन ने तत्कालीन आश्रम व्यवथा में व्याप्त भ्रष्टाचार, अनैतिकता, दुर्व्यवहार आदि को उपन्यास वर्णित करते हुए आश्रम व्यवस्था में बदलाव की वकालत करते हैं।

"चम्पा फैली हथेलियों को देखती रही। नाखून एक–दूसरे को खरोंच रहे थे। संजीदगी में डूबकर कहने लगी, इस 'आश्रम' शब्द से मैं बहुत घबराती हूं। रही होगी इसके पीछे कभी अच्छी भावना, अब तो ये आश्रम अनैतिकता के अड्डे हैं—स्वार्थियों के अखाड़े ! हमारी जैसी मूक असहाय बकरियों की ही नहीं, आप जैसे आदर्शवादी धर्मभीरू बैलों की भी बलि इन आश्रमों के अन्दर चढ़ती आई है। अब वक्त आ गया है कि इन आश्रमों के ढाँचे हम बदल डालें..."

उपसंहार -

डॉ. बाबा साहेब अंबेडकर ने स्त्री को दलितों में भी दलित कहकर यह स्पष्ट किया कि यहां सबसे अधिक दलन यदि किसी का हुआ है तो वह स्त्री ही है। कुम्भीपाक उपन्यास भी इसी दलन की कहानी है। अब भी बड़े शहरों में लड़कियों से खुले–आम देह–व्यापार करवाया जाता है। समाचारपत्र में पढ़ने को मिलता है कि छोटी बच्ची से लेकर बूढ़ी औरत तक इस कुम्भीपाक की शिकार हैं। स्त्री सबलीकरण के दौर में आधुनिक स्त्रियां देह–व्यापार के कुचक्र तोड़ने में सबल हुईं हैं। जो उपन्यास के अधिकांश पात्रों में देखने को मिलता है।।

संदर्भ -

1. नागार्जुन, कुम्भीपाक, पृष्ठ,66
2. नागार्जुन, कुम्भीपाक, पृष्ठ,67
3. नागार्जुन, कुम्भीपाक, पृष्ठ,35
4. नागार्जुन, कुम्भीपाक, पृष्ठ,36,37
5. नागार्जुन, कुम्भीपाक, पृष्ठ,92
6. नागार्जुन, कुम्भीपाक, पृष्ठ,130